||श्री राधावल्लभो जयति||
||श्री हित हरिवंशचन्द्रो जयति||

रसिक भूषण सन्त "श्री ध्रुवदास जी" कृत

"श्रीवृन्दावन शतलीला"

“क्वासौ राधा निगम पदवी दूरगा कुत्र चासौ,
कृष्णस्तस्याः कुचकमलयोरन्तरैकान्तवासः।
क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गयकर्मा,
इयत्ता नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य।।

“श्रीराधामाधव” युगल के मधुरातिमधुर नित्य केलि रस का चिंतन तभी हो सकता है जब सर्वप्रथम सम्यक रूप से श्री वृन्दावन का स्वरूप हृदय में आए और यह स्वयं श्री वृन्दावन की कृपा से ही सम्भव है।

प्रथम नाम हरिवंश हित, रट रसना दिन रैन।

प्रीति रीति तब पाइयै, अरु वृंदावन ऐन ॥1॥

चरन सरन हरिवंश की, जब लगि आयौ नाहिं।

नव निकुंज निजु माधुरी, क्यौं परसै मन माहिं।।2।।

वृंदावन सत करन कौं, कीन्हौं मन उत्साह।

नवल राधिका कृपा बिनु, कैसे होत निबाह ॥3॥

यह आसा धरि चित्त में, कहत जथा मति मोर।

वृन्दावन सुख रंग कौ, काहु न पायौ ओर ।।4।।

दुर्लभ दुर्घट सबनि कैं, वृन्दावन निजु भौन।
नवल राधिका कृपा बिनु, कहिधौं पावे कौन ।।5।।
सबै अंग गुन हीन हौं, ताको जतन न कोई।
एक किशोरी कृपा तैं, जो कछु होइ सो होई ।।6।।
सोऊ कृपा अति सुगम नहिं, ताको कौन उपाय ।
चरन सरन हरिवंश की, सहजहिंबन्यौ बनाव ।।7।।
हरिवंश चरन उर धरनि धरि, मन वच कै विश्वास।
कुँवरि कृपा है है तबहि, अरु वृन्दावन वास ।।8।।

प्रिया चरन बल जानि कै, बाढ़यौ हिये हुलास।
तेई उर में आनि हैं, श्री वृन्दा विपिन प्रकाश ।।9।।
कुवारी किसोरी लाडिली, करुनानिधि सुकुमारि।
वरनौं वृन्दा विपिन कौं, तिनके चरन संभारि ।।10।।
हेममई अवनी सहज, रतन खचित बहु रंग।
चित्रित चित्र विचित्र गति, छबि की उठत तरंग।।11।।
वृंदावन झलकनि झमकि, फूले नैन निहारि।
रवि ससि दुतिधर जहाँ लगि, ते सब डारे वारि।।12।।

वृन्दावन दुतिपत्र की, उपमा कौं कछु नाहिं।
कोटि-कोटि बैकुण्ठ हूँ, तिहि सम कहेन जाहिं।।13।।
लता-लता सब कल्पतरु, पारिजात सब फूल।
सहज एक रस रहत हैं, झलकत यमुना कूल।।14।।
कुंज-कुंज अति प्रेम सौं, कोटि-कोटि रति मैन।
दिनहिं सँवारत रहत हैं, श्री वृंदावन ऐन ।15। ।
विपिन राज राजत दिनहि, बरषत आनन्द पुंज।
लुब्ध सुगन्ध पराग रस, मधुप करत मधु गुंज।।16।।

अरुन नील सित कमल कुल, रहे फूल बहुरंग।
वृन्दावन पहिरे मनौ, बहु विधि वसन सुरंग।।17।।
हित सौं त्रिविध समीर बहै, जैसी रुचि जिहिं काल।
मधुर-मधुर कल कोकिला, कूजत मोर मराल।।18।।
मण्डित जमुना वारि यौं, राजति परम रसाल।
अति सुदेस सोभित मनौं, नील मनिन की माल।।19।।
विपिन धाम आनन्द कौ, चतुरई चित्र ताहि।
मदन केलि सम्पति सदा, तिहि करि पूरन अहि ।।20 ।।

देवी वृन्दाविपिन की, वृन्दा सखी सरूप।
जिहिंविधि रुचि है दुहुँनि की, तिहिं विधि करत अनूप।।21।।
छिन छिन बन की छवि नई, नवल युगल के हेत।
समुझि बात सब जीय की, सखि वृन्दा सुख देत।।22।।
गावात वृन्दाविपिन गुन, नवल लाड़ली लाल।
सुखद लता फल फूल द्रुम, अद्भुत परम रसाल।।23।।
उपमा वृंदाविपिन की, कहि धौं दीजै काहि।
अति अभूत अद्भुत सरस, श्री मुख बरनत ताहि।।24।।

आदि अन्त जाकौ नहीं, नित्य सुखद बन आहि ।

माया त्रिगुन प्रपंच की, पवन न परसत ताहि।।25।।

वृन्दाविपिन सुहावनौं, रहत एक रस नित्त।

प्रेम सुरंग रँगे तहाँ, एक प्रान द्वै मित्त।।26।।

अति सुरूप सुकुवाँर तन, नव किसोर सुखरासी ।

हरत प्रान सब सखिनि के, करत मन्द मृदु हसि। ।27 ।।

न्यारौ है सब लोक तें, वृन्दावन निज गेह।

खेलत लाड़िली लाल जहाँ, भींजे सरस सनेह।।28।।

गौर-स्याम तन मन रँगे, प्रेम स्वाद रस सार।
निकसत नहिं तिहिं ऐंन ते, अटके सरस बिहार।।29।।
बन है बाग सुहाग कौ, राख्यौ रस में पागि।
रूप-रंग के फूल दोउ, प्रीति लता रहे लागि।।30।।
मदन सुधा के रस भरे, फूलि रहे दिन रैन।
चहुँदिसि भ्रमत न तजत छिन, भृंग सखिन के नैंन।।31।।
कानन में रहे झलकि कैं, आनन विवि विधु काँति।
सहज चकोरी सखिनि की, अखियाँ निरखि सिराँति।।32।।

ऐसे रस में दिन मगन, नहिं जानत निसि भोर।
वृंदावन में प्रेम की, नदी बहै चहुँ ओर।।33।।
महिमा वृन्दा विपिन की, कैसे कै कहि जाय।
ऐसे रसिक किशोर दोऊ, जामें रहे लुभाय।।34।।
विपिन अलौकिक लोक में, अति अभुत रसकंद।
नव किसोर इक वैस दुम, फूले रहत सुछंद ।।35।।
पत्र-फूल-फल-लता प्रति, रहत रसिक पिय चाहि।
नवल कुँवरि देख छटा जल, तिहिं करिसींचे आहि।।36।।

कुँवरि चरन अंकित धरनि, देखत जिहि-जिहिं ठौर।
प्रिया चरन रज जानि कै, लुठत रसिक सिरमौर।।37।।
वृंदावन प्यारौ अधिक, यातें प्रेम अपार।
जामें खेलति लाडिली, सर्वस्व प्रान अधार।।38।।
सबै सखी सब सौंज लै, रँगी जुगल ध्रुव रंग।
समै – समै की जानि रुचि, लियै रहति हैं संग।।39।।
वृंदावन वैभव जितौ, तितौ कह्यौ नहिं जात।
देखत सम्पति विपिन की, कमला हू ललचात।।40।।

वृंदावन की लता सम, कोटि कल्पतरु नाहिं।
रज की तुल बैकुंठ नहिं, और लोक किहि माहिं।।41।।
श्रीपति श्रीमुख कमल कह्यौ, नारद सौं समुझाई।
वृन्दावन रस सबनि तें, राख्यौ दूरि दुराइ।।42।।
अंस – कला औतार जे, ते सेवत हैं ताहि।
ऐसे वृन्दाविपिन कौं , मन – वच कै अवगाहि।।43।।
सिव – विधि – उद्धव सबनि कै, यह आसा रहै चित्त।
गुल्म लता है सिर धरै, वृंदावन रज नित्त।।44।।

चतुरानन देख्यौ कछुक, वृंदाविपिन प्रभाव।
द्रुम – द्रुम प्रति अरु लता प्रति, औरै बन्यौ बनाव।।45।।
आप सहित सब चतुर्भुज , सब ठाँ रह्यौ निहारि।
प्रभुता अपनी भूलि गयौ , तन मन के रह्यौ हारि।।46।।
लोक चतुर्दश ठकुरई, सम्पति सकल समेत
सब तजि बसि वृन्दाविपिन, रसिकनि कौ रस खेत।।47।।
सकहि तौ वृंदापिपिन बसि, छिन-छिन आयु बिहात।
ऐसौ समै न पाइहै, भली बनी है बात।।48।।

छाँड़ि स्वाद सुख देह के, और जगत की लाज।
मनहिं मारि तन हारि कै, वृंदावन में गाज।।49।।
वृन्दावन के बसत ही, अन्तर जो करै आनि।
तिहि सम सत्त्रु न और कोऊ, मन बच कै यह जानि।।50।।
वृंदावन के वास कौ, जिनकै नाहिं हुलास।
माता-मित्र-सुतादि-तिय, तजि ध्रुव तिनके पास।।51।।
और देस के बसत ही, अधिक भजन जो होय।
इहि सम नहिं पूजत तऊ, वृन्दावन रहै सोय।।52।।

वृन्दावन में जो कबहूँ, भजन कछू नहिं होय।
रज तौ उड़ि लागै तनहिं, पीवै जमुना तोय।।53।।
वृन्दाविपिन प्रभाव सुनि, अपनौ ही गुन देत।
जैसे बालक मलिन कौं, मात गोद भर लेत।।54।।
और ठौर जो जतन करै, होत भजन तऊ नाहिं।
ह्याँ फिरै स्वारथ आपने, भजन गहे फिरै बाँहि।।55।।
और देस के बसत ही, घटत भजन की बात।
वृन्दावन में स्वारथौ, उलटि भजन है जात।।56।।

यद्यपि सब औगुन भरयौ, तदपि करत तुव ईठ।
हितमय वृन्दाविपिन कौं, कैसे दीजै पीठ।।57।।

वृंदावन तें अनत ही, जेतिक द्यौस बिहात।
ते दिन लेखे जिनि लिखौ, वृथा अकारथ जात।।58।।

भजन रसमई विपिन धर, समुझि बसै जो कोई।
प्रेम-बीज तिहिं खेत तें, तब ही अंकुर होई।।59।।

यद्यपि धावत विषै कौं, भजन गहत बिच पानि।
ऐसे वृन्दाविपिन की, सरन गही ध्रुव आनि।।60।।

बसिबौ वृन्दाविपिन कौ, जिहि तिहि विधि दृढ़ होई।
नहिं चूकै ऐसौ समौ, जतन कीजिए सोई।।61।।
कहँ तू कहँ वृन्दाविपिन, आनि बन्यौ भल बान।
यहै बात जिय समुझि कै, आपनौ छोड़ सयान।।62।।
छिन भंगुर तन जात है, छाँड़हि विषै अलोल।
कौड़ी बदले लेहि तू, अद्भुत रतन अमोल।63।।
कोटि-कोटि हीरा रतन, अरु मनि विविध अनेक।
मिथ्या लालच छाँड़ि कै, गहि वृन्दावन एक।।64।।

नहिं सो माता पिता नहिं, मित्र पुत्र कोउ नाहीं।
इनमें जो अन्तर करै, बसत वृन्दावन माँहि।।65।।
नाते नाते जगत के, ते सब मिथ्या मान।
सत्य नित्य आनन्द मय, वृंदावन पहिचान।।66।।
बसिकै वृन्दाविपिन में, ऐसी मन में राख।
प्रान तजौं बन ना जौ, कहौ बात कोऊ लाख।।67।।
चलत फिरत सुनियत यहै, (श्री) राधावल्लभ लाल।
ऐसे वृन्दाविपिन में, बसत रहौ सब काल।।68।।

बसिबौ वृंदाविपिन कौ, यह मन में धरि लेहु।
कीजै ऐसौ नेम दृढ़, या रज में परै देह।।69 ।।
खण्ड-खण्ड है जाइ तन, अंग-अंग सत टूक।
वृंदावन नहिं छाँड़िये, छाँड़िबौ है बड़ चूक ।।70।।
पटतर वृंदाविपिन की, कहिं धौं दीजै काहि।
जेहि बन की ध्रुव रैनु में, मरिबौउ मंगल आहि।।71।।
वृंदावन के गुनन सुनि, हित सौं रज में लोट।
जेहि सुख के पूजत नहीं, मुक्ति आदि सत कोट।।72।।

सुरपति-पसुपति-प्रजापति, रहे भूल तेहि ठौर।
वृंदावन वैभव कहौ, कौन जानिहै और।।73।।
यद्यपि राजत अवनि पर, सबते ऊँचौ आहि।
ताकी सम कहिये कहा, श्रीप्रीति बंदत ताहि।।74।।
वृंदावन वृंदाविपिन, वृंदा कानन ऐन।,
छिन-छिन रसना रटौ कर, वृंदावन सुख दैन।।75।।
वृंदावन आनन्द घन, तो तन नश्वर आहि।
पशु ज्यों खोवत विषै रस, काहि न चिंतत ताहि।।76।।

वृन्दावन वृन्दा कहत, दुरित वृन्द दुरि जाहिं।
नेह बेलि रस भजन की, तब उपजै मन माहिं।।77।।
वृन्दावन श्रवनन सुनहि, वृन्दावन कौ गान।
मन वच कै अति हेत सौं, वृन्दावन उर आन।।78।।
वृन्दावन कौ नाम रट, वृन्दावन कौं देखी ।
वृन्दावन से प्रीत कर, वृन्दावन उर लेखी।।79।।
वृन्दाविपिन प्रनाम करि, वृन्दावन सुख खान।
जो चाहत विश्राम ध्रुव, वृन्दावन पहचान।।80।।

तजि कै वृन्दाविपिन कौं, और तीर्थ जे जात।
छाँड़ि विमल चिंतामणी, कौड़ी कौं ललचात।।81।।

पाइ रतन चीन्हौं नहीं, दीन्हों कर तें डार।
यह माया श्री कृष्ण की, मौह्यौ सब संसार।।82।।

प्रगट जगत में जगमगै, वृन्दाविपिन अनूप।
नैन अछत दीसत नहीं, यह माया कौ रूप।।83।।

वृन्दावन को जस अमल, जिहि पुरान में नाहिं।
ताकी बानी परौ जिनि, कबहूँ श्रवनन माहिं।।84।।

वृन्दावन कौ जस सुनत, जिनकै नाहिं हुलास।
तिनके पर न कीजिये, तजि ध्रुव तिनकौ पास।।85।।
भुवन चतुर्दश आदि दै, द्वै है सबकौ नास।
इक छत वृन्दाविपिन घन, सुख कौ सहज निवास।।86।।
वृन्दावन इह विधि बसै, तजि कै सब अभिमान।
तृण ते नीचौ आप कौं, जानै सोई जान।।87।।
कोमल चित्त सब सौं मिलै, कबहूँ कठोर न होइ।
निस्प्रेही निर्वैरता, ताकौ शत्रु न कोइ।।88।।

दूजे – तीजे जो जुरै, साख-पत्र कछु आय।
ताही सों संतोष करि, रहै अधिक सुख पाय।।89।।
देह स्वाद छुटि जाहिं सब, कछु होइ छीन शरीर ।
प्रेम रंग उर में बढ़े, बिहरै जमुना तीर।।90।।
जुगल रूप की झलक उर, नैननि रहै झलकाइ।
ऐसे सुख के रंग में, राखै मनहिं रँगाइ।।91।।
आवै छबि की झलक उर, झलकै नैनन वारि।
चिंतन स्यामल-गौर तन, सकहि न तनहिं संभारि।।92।।

जीरन पट अति दीन लट, हिये सरस अनुराग।
विवस सघन बन में फिरै, गावत युगल सुहाग।।93।।
रसमय देखत फिरै बन, नैनन बन रहै आई।
कहुँ-कहुँ आनँद रंग भरी, परै धरनि थहराइ।।94।।
ऐसी गति ह्वै है कबहुँ, मुख निसरत नहिं बैन।
देखि-देखि वृन्दाविपिन, भरि-भरि ढ़ारै नैन।।95।।
वृन्दावन तरु-तरु तरे, ढरै नैन सुख नीर।
चिंतत फिरै आबेस बस, स्यामल-गौर सरीर।।96।।

परम सच्चिदानंद घन, वृन्दाविपिन सुदेश ।
जामें कबहूँ होत नहिं, माया काल प्रवेस।।97।।
सारद जो सत कोटि मिलि, कलपन करें विचार।
वृन्दावन सुख रंग कौ, कबहुँ न पावै पार।।98।।
वृन्दावन आनन्द घन, सब तें उत्तम आहि।
मोते नीच न और कोऊ, कैसे पैहों ताहि ।।99।।
इत बौना आकाश फल, चाहत है मन माहिं।
ताको एक कृपा बिना, और जतन कछु नाहिं।।100।।

कुँवरि किशोरी नाम सौं, उपज्यौ दृढ़ विस्वास।
करुणानिधि मृदु चित्त अति, तातें बढ़ी जिय आस।।101।।
जिनको वृन्दाविपिन है, कृपा तिनहि की होइ।
वृन्दावन में तबहि तौ, रहन पाइ है सोइ।।102।।
वृन्दावन सत रतन की, माला गुही बनाइ।
भाग भाग जाके लिखी, सोई पहिरै आइ।।103।।
वृन्दावन सुख रंग की, आशा जो चित्त होइ।
निसि दिन कंठ धरे रहै, छिन नहिं टारै सोइ।।104।।

वृन्दावन सत जो कहै, सुनि है नीकी भाँति।
निसिदिन तेहि उर जगमगै, वृन्दावन की काँति।।105।।

वृन्दावन कौ चितवन, यहै दीप उर बार।
कोटि जन्म के तम अगहि, काटि करै उजियार।।106।।

बसिकै वृन्दाविपिन में, इतनौ बड़ौ सयान।
जुगल चरण के भजन बिन, निमिष न दीजै जान।।107 ।।

सहज विराजत एक रस, वृन्दावन निज धाम।
ललितादिक सखियन सहित, क्रीड़त स्यामास्याम।।108।।

प्रेमसिंधु वृन्दाविपिन, जाकौ आदि न अन्त ।
जहाँ कलोलत रहत नित, युगल किशोर अनादि।।109 ।।
न्यारौ चौदह लोक तें, वृन्दावन निज भौन।
तहाँ न कबहूँ लगत है, महा प्रलय की पौन।।110।।
महिमा वृन्दाविपिन की, कहि न सकत मम जीह।
जाके रसना द्वै सहस, तिनहूँ काढ़ी लीह।।111।।
एती मति मोपै कहा, सोभा निधि बनराज।
ढीठौ कै कछु कहत हौं, आवत नहिं जिय लाज।।112।।

मति प्रमान चाहत कह्यौ, सोऊ कहत लजात।
सिन्धु अगम जिहिं पार नहिं, कैसे सीप समात।।113।।
या मन के अवलंब हित, कीन्हौं आहि उपाय।
वृन्दावन रस कहन में, मति कबहूँ उरझाय।।114।।
सोलह सै ध्रुव छयासिया, पून्यौ अगहन मास।
यह प्रबन्ध पूरन भयौ, सुनत होत अघ नास।।115।।
दोहा वृन्दाविपिन के, इकसत षोड़श आहि।
जो चाहत रस रीति फल, छिन-छिन ध्रुव अवगाहि।।116।।

।। इति श्री वृन्दावन सत लीला की।।

।। जै जै श्री हित हरिवंश।।

।।“जा पर श्री हरिवंश कृपाला।।

।।ता की बाँह गहे दोऊ लाला।।”

।।जय जय श्री वृंदावन।।

।।जय जय श्री राधे।।